4. सांस्कृतिक-नवोत्थान

4.1. धार्मिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण

जब किसी हताश राष्ट्र में नवजागरण और नवजीवन का उन्मेष होने लगता है तो उससे जीवन का कोई अंग या क्षेत्र अछूता नहीं रह जाता। राजनीति, धर्म, संस्कृति, समाज, साहित्य और पत्रकारिता आदि में परिवर्तनों की ध्वनियाँ साफ सुनायी पड़ने लगती हैं। नवजागृति का अभ्युदय राजनीति से ही हो, यह आवश्यक नहीं। भारत में आध्यात्मिकता एवं धर्म ही समस्त जीवन के कार्यकलापों का मेरुदण्ड रहा है, यहां धर्म के क्षेत्र से ही पुनर्जागरण के नये क्षितिज, नये स्पन्दन और नये आन्दोलनों ने जन्म लिया है। सर वैलेंटाइन सिरोल का मत भी है कि हिन्दुओं के सामाजिक एवं धार्मिक पुनरुत्थान से ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ।[1]

4.1.1. 19वीं शती की सांस्कृतिक चेतना—आज भारत में राजनीति और धर्म को पृथक् करने की माँग उठायी जा रही है किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण काल में राष्ट्रीय उन्नायकों एवं बुद्धिजीवी रचनाकारों ने जीवन को अनेक कटघरों और दायरों में विभक्त करके नहीं देखा था। उनके लिए जीवन एक अखण्ड और अविभाज्य तत्त्व था। राजनीति, धर्म, समाज, संस्कृति, पत्रकारिता और साहित्य आदि परस्पर सापेक्ष एवं सम्बद्ध थे। 'राष्ट्रीय कांग्रेस' (1885) ने भी एक ऐसा सर्वव्यापी आदर्श अपने सामने प्रस्तुत किया, जिसमें सारा जीवन यहाँ-से-वहाँ तक अविभाज्य है।"[2] आगे चलकर गांधी जी ने भी इसी धारणा को पुष्ट किया था। यह दृष्टि तत्कालीन सांस्कृतिक आन्दोलन एवं पत्रकारिता में भी देखी जा सकती है। इन सभी का कार्य-क्षेत्र धर्म, समाज तथा राजनीति आदि में समान रूप से नवीनीकरण और पुनर्जागरण का रहा।

इसी मनोवृत्ति के कारण तत्कालीन पत्रकार केवल संपादक और साहित्यिक रचनाकार ही नहीं थे, उन्होंने एक साथ राष्ट्रीय उन्नायक, समाज सुधारक, राजनीतिक कार्यकर्त्ता, दार्शनिक-विचारक और क्रांतिकारी आन्दोलनकर्त्ता के दायित्व भी पूरी निष्ठा

---

1. विशाल भारत, सितंबर 1960, पृ० 185
2. सं० हरिभाऊ उपाध्याय, ले० पट्टाभि सीतारमैया—कांग्रेस का इतिहास, भाग 1

से निभाते थे। एक ओर ये संपादक राजनीतिक मोर्चे पर अंग्रेजी शासन के दमन और शोषण के विरुद्ध आग उगलते डटे रहते थे, दूसरी ओर सामाजिक-धार्मिक रूढ़िवादिता और अन्ध-परम्परा से दृढ़तापूर्वक टक्कर लेते थे। उनकी साहसी योद्धा के समान लड़ाई तथा अहर्निश संघर्ष जीवन के सभी स्तरों पर एक साथ समान रूप से चलते रहते थे।[1]

2. **धर्म-जाति-समाज सुधार सम्बन्धी पत्रकारिता**—उस युग में राष्ट्रीय नव-निर्माण की चेतना विभिन्न केन्द्रीय स्तरों पर प्रस्फुटित हुई थी। पत्रकारिता में भी यह धार्मिक, सामाजिक तथा जातीय संस्थाओं के मुखपत्रों के रूप में अंकुरित हुई। राष्ट्रीय जागरण की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति राजा राम मोहन राय के धार्मिक-सामाजिक सुधार सम्बन्धी पत्रों 'ब्रह्मनिकल मैगजीन' (अंग्रेजी-बंगला सितम्बर 1821) 'मिरात-उल-अखबार' (फारसी, 12 अप्रैल, 1822), 'संवाद कौमुदी' (बँगला-साप्ताहिक 1821), 'बंगदूत' (हिन्दी आदि 1829) आदि पत्रों में हुई। इसी नव-चेतना को आगे चलकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'सोम प्रकाश बँगला (15 नवम्बर, 1858) 'प्रार्थना-समाज' की 'सुबोध पत्रिका, 'केशवचन्द्र सेन द्वारा निर्देशित 'सुलभ समाचार' (बँगला) तथा राम कृष्ण मिशन के 'उद्‌बोधक', 'प्रबुद्ध भारत', 'समायान' तथा 'विश्वयी' आदि पत्रों ने बढ़ाया। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रारम्भ से ही धार्मिक-सामाजिक सुधार के लिए धार्मिक सामग्री का प्रकाशन हुआ था।[2] 'उदंत मार्तण्ड' (1826) में 'संसार पर वैदिक धर्म का प्रभाव' आदि धार्मिक लेख प्रकाशित हुए थे। हिंन्दी के प्रथम दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' (1854) में 'विधवा-विवाह' पर सामाजिक लेख प्रकाशित हुए थे।

'ब्रह्मसमाज' के सिद्धान्तों को मुखर करने वाली पत्रिकाओं में 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' (बँगला 1849-1902), 'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' (1866), 'ब्रह्मज्ञान प्रकाश' (1868), 'हिन्दू बांधव' (1876) आदि रहीं।

भारतीय नवजागरण की संपूर्ण धाराओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना का विकास लगभग एक साथ हुआ। पत्रकारिता में आर्यसमाज, सनातन धर्म, जैन धर्म तथा अनेक जातियों ने यथा गौड़ ब्राह्मण सभा (मथुरा) 'कायस्थ सभा' (गाजीपुर) अग्रवाल सभा (मथुरा) आदि ने अपने-अपने मुखपत्र प्रकाशित किए। इन सुधार-संगठनों ने जनता में सामाजिक नव जागृति के लिए पत्र-पत्रिकाओं को साधन बनाया। विभिन्न धार्मिक-सामाजिक-जातीय संगठनों, धर्मों तथा आन्दोलनों की जाति-धर्म समाज सुधार सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ निम्नलिखित थीं—

---

1. 'भारतेन्दु युग'
2. Studies in the Bengal Renaissance : Edited by Atul Chandra Gupta, p. 443

1. 'आर्य समाज' की पत्र-पत्रिकाएँ

प्रकाशन तिथि	पत्र का नाम	संपादक	स्थान
सन् 1868 ई०	आर्य-दर्पण	मुंशी बख्तावर सिंह	शाहजहाँपुर
1873	आर्यपत्रिका	आर्य सभा	मिर्जापुर
1876	आर्यभूषण	मुंशी बख्तावर सिंह	शाहजहाँपुर
1877	धर्मप्रकाश	आर्य सभा	कपूरथला
,,	अजाब	मु० बख्तावर सिंह	शाहजहाँपुर
1878	आर्यमित्र	एच० के० भट्टाचार्य	काशी
,,	आर्य-समाचार	कल्याणराय	मेरठ
,,	भारतसुदशा-प्रवर्त्तक	पं० गणेश प्रसाद शर्मा	फर्रुखाबाद
1881	वैदिक मैगजीन	आर्य सभा	लाहौर
1882	धर्मोपदेश	,,	,,
1884	वेद प्रकाश	हीरालाल	कानपुर
1886	राजस्थान समाचार	समर्थदान	अजमेर
1887	आर्यावर्त्त	पं० क्षेत्रपाल शर्मा	कलकत्ता-राँची
1888	भारत भगिनी	श्रीमती हरदेवी	लाहौर
,,	आर्यमित्र	हरसहाय मल मास्टर भूरामल	मुरादाबाद
1889	आर्यजीवन	पं० गजानन राव हाणे	प्रयाग
,,	संदर्भ प्रचारक	लाला देवराज	प्रयाग
1890	परोपकारी	पं० पद्मसिंह शर्मा	आगरा
,,	सद्धर्म प्रचारक	मुंशीराम (श्रद्धानंद)	दिल्ली
1896	आर्यभास्कर	आर्यसभा	खीरी
1900	आर्य सेवक	पं० गणेश शर्मा	नरसिंह पुर
,,	दयानंद पत्रिका	तुलसीराम स्वामी	,,

2. सनातन धर्म पत्र-पत्रिकाएँ

प्रकाशन तिथि	पत्र का नाम	संपादक	स्थान
1859	धर्मप्रकाश	मनसुखराय	अहमदाबाद
1871	हिन्दू प्रकाश		कानपुर
1873	हिन्दी प्रकाश	धर्मसभा	अमृतसर
,,	मर्यादा परिपाटी समाचार	पं० दुर्गा प्रसाद सुकुल	आगरा
1875	धर्मप्रकाश	पं० शिवराखन 'सुकुल'	प्रयाग
,,	धर्मपत्रिका		,,
1877	मित्र-विलास	मुकुन्दराम	लाहौर
,,	धर्मपत्र	सदासुखलाल	प्रयाग
1881	धर्म सभा	अंबिका चरण घोष	
1884	धर्म प्रचारक	श्रीकृष्ण प्रसन्न सेन	काशी
1885	,,	धर्मोपदेश सभा	बुधाना-मुजफ्फर नगर
,,	भारत पंचामृत	बालगोविन्द सिंह	कलकत्ता
,,	धर्मप्रकाश	गौरीलाल	मुरादाबाद
1887	धर्मसभाअखबार	पं० हरिशंकर	लखनऊ
1889	ब्रजविनोद		मथुरा
,,	परचा धर्म सभा	पं० गौरीशंकर वैद्य	फर्रुखाबाद
,,	धर्मसुधार वर्षण	कुल यशस्वी शास्त्री	काशी
1890	निगमागम	निगमागम मण्डली	मेरठ-मथुरा
,,	भारत धर्मामृत		पूर्णिया
,,	ब्रजरज		मथुरा
,,	ब्रह्मवर्त्त		बिठूर
,,	सत्य धर्म पत्र	रामप्रसाद दुर्गाप्रसाद	बरेली
,,	सत्य धर्म मित्र		आगरा, बरेली
,,	सुदर्शन-चक्र	पं० ठाकुर प्रसाद शर्मा	मथुरा
1892	विज्ञ वृन्दावन	पं० नन्हेलाल	वृन्दावन
,,	साकेत जीवन	बा० रामनारायण	अयोध्या
1893	विचार वेदान्त		नागपुर
1897	सनातन धर्म पताका	पं० रामस्वरूप गौड़	मुरादाबाद

प्रकाशन तिथि	पत्र का नाम	संपादक	स्थान
1897	धर्मामृत	धर्म सभा	बंबई
,,	निगमागम चन्द्रिका	निगमागम मण्डल	मथुरा
,,	भारतोपदेशक	ब्रह्मानंद सरस्वती	मेरठ
1898	सनातन धर्म		सहारनपुर

3. जैन धर्म सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

प्रकाशन तिथि	पत्र का नाम	संपादक	स्थान
1880	जैन पत्रिका	जैन सभा	प्रयाग
1880	धर्मनीति तत्व	पं० साधोराम भट्ट	पटना
1884	जैन जीयालाल प्रकाश	जीयालाल प्रकाश	फरुखनगर दिल्ली
,,	,,	,,	दिल्ली
,,	जैन-बोधक	रावजी सखाराम दोशी	शोलापुर
1891	जैन प्रभाकर	पं० गोपी नाथ	लाहौर, अजमेर
1892	जैन हितैषी	बाबू पन्नालाल	मुरादाबाद
1897	जैन भास्कर	जियालाल जैन	फरुखनगर
1900	जैन मित्र	गोपीनाथ बरैया	बम्बई

4. कतिपय ईसाई मिशनरी पत्र

प्रकाशन तिथि	पत्रका नाम	संपादक	स्थान
1861	ज्ञानप्रकाश	मिशनरी मुख पत्र	सिकन्दरा
1863	लोकमित्र	,,	,,
1866	सत्यदीपक	,,	बंबई
1871	म्यूर गजट	,,	मेरठ
,,	साण्डर्स गजट	,,	सहारनपुर
1873	मंगल समाचार	,,	अलीगढ़
1866	दूत पत्रिका	,,	राँची
1884	अबला हितकारक	अमेरिकन मिशन	लखनऊ
1866	ब्रह्म विद्या प्रचारक	थियोसाफी मुखपत्र श्री सूर्यभान	लाहौर

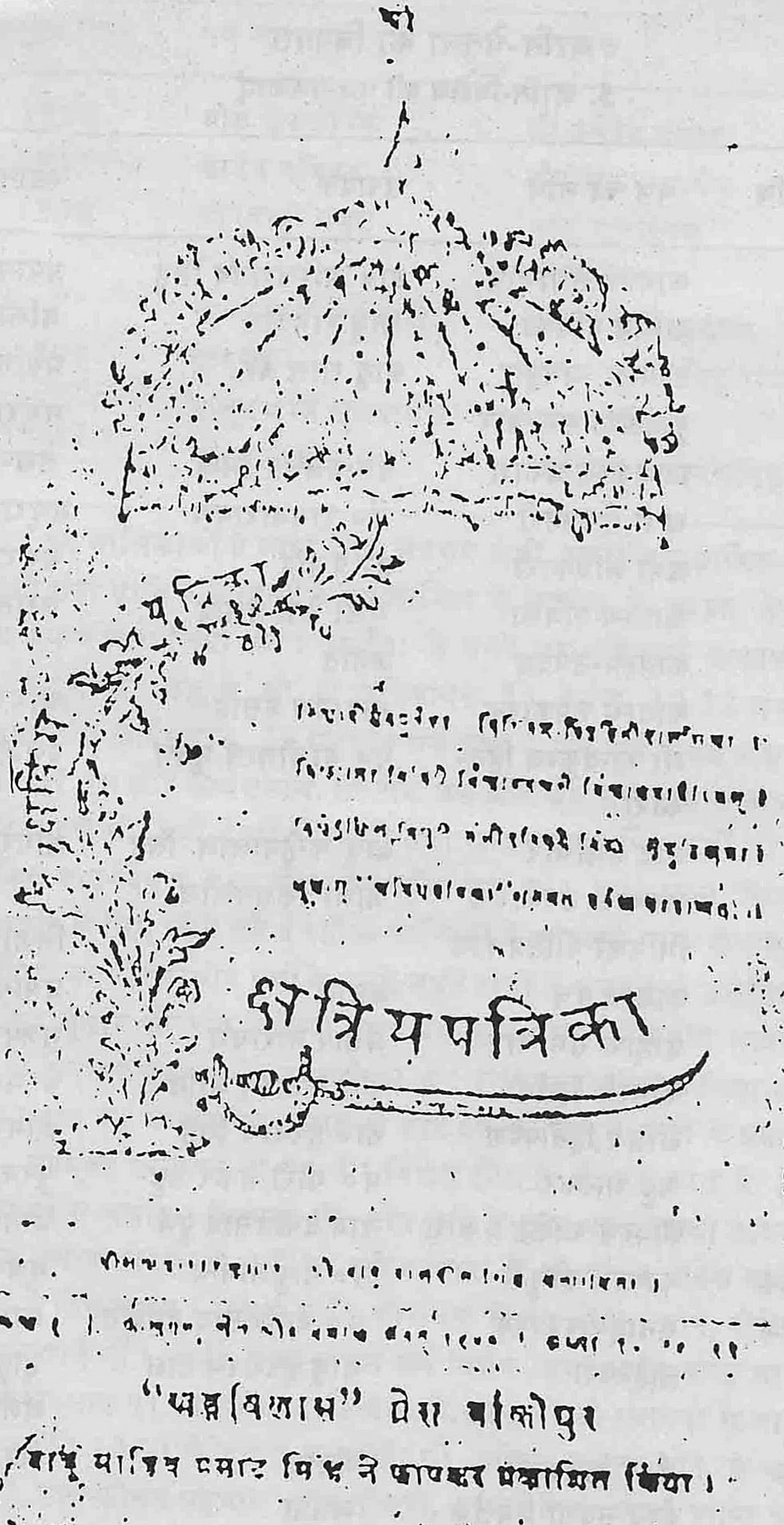

क्षत्रिय पत्रिका का प्रथम पृष्ठ

जाति-चेतना का विकास

5. जाति-विशेष की पत्र-पत्रिकाएं

प्रकाशन तिथि	पत्र का नाम	संपादक	स्थान
1878	कायस्थ समाचार	डा० सच्चिदानंद सिंह	प्रयाग
1881	क्षत्रिय पत्रिका	बाबू रामदीन	बाँकीपुर
1884	कायस्थ व्यवहार	बाबू लाल जी	प्रयाग
1884	कुलश्रेष्ठ समाचार		मथुरा
"	कान्यकुब्ज प्रकाश	पं० बलभद्र मिश्र	लखनऊ
1888	खत्री हितकारी	पं० रामनारायण	मथुरा, आगरा
"	खत्री अधिकारी	हर प्रसाद	मथुरा
1889	कायस्थ पत्रिका	मुंशी देवी प्रसाद	लखनऊ
"	कायस्थ-उपदेश	अज्ञात	
"	कायस्थ उपकारक	नारायण प्रसाद	आगरा
"	श्री कान्यकुब्ज हित-कारी	पं० बाजीलाल शुक्ल	इलाहाबाद
"	जाट समाचार	बाबू कन्हैयालाल सिंह	आगरा
"	अग्रवाल उपकारक	लाला किशनलाल	"
"	मिथिला नीतिप्रकाश		मिर्जापुर
1890	कायस्थ पंच	अज्ञात	प्रयाग
"	ब्राह्मण समाचार	प्रताप नारायण	मुजफ्फरनगर
"	कायस्थ हितैषी	कर्ण कायस्थ जाति	दरभंगा
1892	क्षत्रिय हितोपदेश	ठा० हरनाथ सिंह	आगरा
1893	भट्ट भास्कर	पं० गौरी शंकर भट्ट	पुरकानपुर
"	कायस्थ कांफ्रेंस प्रकाश	राय देवीप्रसाद पूर्ण	कानपुर
1894	कायस्थ कौमुदी	पं० गोकुलानन्द	मुजफ्फरनगर
1894	सनाढ्योपकारक	पं० देवीप्रसाद दीक्षित	आगरा
"	माहेश्वरी	बाबू हरशरण दास	हापुड़-अलीगढ़
1895	वैश्य हितकारी	अज्ञात	मेरठ
"	वैश्य सुदशा प्रवर्त्तक	अज्ञात	
"	ब्राह्मण समाचार	इच्छाराम	हरदोई
"	चतुर्वेदी	हीरालाल	आगरा
1896	चतुर्वेदी पत्रिका	पं० लुकमानीदास मिश्र	"

प्रकाशन तिथि	पत्र का नाम	संपादक	स्थान
1896	गौड़ हितकारक	श्री बलदेव प्रसाद	मुरादाबाद
1897	भार्गव पत्रिका	गौरीशंकर भार्गव	अजमेर
1898	मारवाड़ी गजट	बाबू राधाकृष्ण हिवड़ेवला	कलकत्ता
"	कान्यकुब्ज हितकारी	गौड़ ब्राह्मण मुखपत्र	
1899	राजपूत	कुंवर हनुमंत सिंह राजवंशी	काशी
"	माथुर वैश्य सुखदायक	ज्वाला प्रसाद	मथुरा
"	भूमिहार ब्राह्मण	कामेश्वर नारायणसिंह	छपरा

इन तालिकाओं से स्पष्ट है कि लगभग सभी सामाजिक-धार्मिक-जातीय संगठनों संस्थाओं तथा धार्मिक संप्रदायों ने पत्रकारिता के माध्यम से भारत के नवजागरण में सक्रिय रूप में भाग लिया था। वस्तुत: ये सभी पत्र-पत्रिकाएँ तत्कालीन नव-चेतना एवं नव-युग के आह्वान की ही परिचायक हैं। केवल 30-32 वर्षों के अंतराल में लगभग 22 आर्यसमाज, 33 सनातन धर्म तथा 8 जैन धर्म के पत्र प्रकाशित हुए। उस युग में जहाँ एक ओर आर्यसमाज, सनातन धर्म और जैन सम्प्रदाय के बीच परस्पर द्वंद्व और तनातनी थी, वहीं ईसाई मिशनरी तथा अन्य साम्प्रदायिक धर्मों की पत्र-पत्रिकाओं में तार्किक वाद-विवाद चरम सीमा पर पहुँच चुका था। अपने-अपने विचारों की रक्षा तथा प्रचार के लिए किये गये वैचारिक धर्म-युद्धों ने घुणाक्षर न्याय से सम्पूर्ण समाज को जगा दिया था। तत्कालीन पत्रों ने अपने-अपने क्षेत्रों में पाठकों को उत्तेजित कर धार्मिक-सामाजिक सुधार की राह दिखायी तथा धर्म और समाज में युगीन आवश्यकताओं और संदर्भों के अनुरूप सुधार और पुनर्व्याख्या कर इनका नवीनीकरण किया। सभी पत्रकार एक ही महान् यज्ञ के समर्पित साधक थे और देश को जागृत करने के प्रयत्न में जुटे थे।

उपर्युक्त तालिका से यह भी विदित होता है कि इस काल में विभिन्न जाति-उपजातियों के पत्रों का विकास भी तीव्र गति से हुआ था। इसका कारण यह था कि भारतीय समाज प्रारम्भ से चली आ रही परम्परा से भी अधिक अनेक जातियों और उप-जातियों में विभक्त था। प्रत्येक जाति की पृथक् विशेष श्रेणी, स्तर, रीति-नीति, आदर्श और मान्यताएँ थीं। जाति-व्यवस्था को धर्म विशेष का समर्थन प्राप्त था। फलस्वरूप जातिगत सद्भाव पर आधारित जाति-संगठनों, संस्थाओं की स्थापना से जाति-धर्म-चेतना मजबूत हुई[1]। 1880 से चुनाव राजनीति की प्रक्रिया प्रारम्भ होने से जाति विशेष के हितों की रक्षा-शोधन पहचान और नौकरी, राजनीतिक लाभ प्राप्ति के लिए जाति व्यवस्था का विस्तार हुआ फलत: जाति-प्रचार के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। 'आर्य समाज' (1875) ने धर्म सुधार आंदोलन में जाति व्यवस्था का विरोध न

1. Sumit Sarkar, Modern India, page 34-35

कर चारों वर्णों पर आधारित वैदिक धर्म और समाज को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया था। जातिगत पृथक् अस्तित्व-प्रतिनिधित्व और सुधार की जागरुकता तथा सांप्रदायिक शक्तियों के विकास से भी धर्म और जाति-भक्ति को बढ़ाने में मदद मिली।

इन जातीय पत्रों का प्रकाशन किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ था? इसका विवेचन तत्कालीन जातीय पत्र 'चतुर्वेदी पत्रिका' (1895) की उपलब्ध प्रति,[1] के आधार पर किया जा सकता है। यह 'चतुर्वेदी एसोसियेशन' आगरा की मुख्य पत्रिका थी जिसकी नीति, मूल्य तथा उद्देश्य आदि का परिचय इस प्रकार दिया गया है—"महाशयों, आपकी सेवा में उपस्थित होने का यह मेरा प्रथम दिवस है। मैं चाहती हूँ कि आपको सद्वाक्यरूपी आभूषणों से प्रतिमास आभूषित करूँ—इसका मुख्य उद्देश्य है कि चतुर्वेदियों में विद्या की वृद्धि होकर उनकी सब प्रकार से उन्नति और जो-जो रीतियां उनके समाज में प्रचलित हैं उनमें शोधन होना चाहिए।'[2]

वस्तुत: उस समय सभी प्रकार के पत्रों ने चाहे उनका स्वरूप राष्ट्रीय हो या धर्म-समाज-जाति सुधार सम्बन्धी, उन्होंने विभिन्न धर्मों और समाज की सनातन परंपराओं को बुद्धि के निकष पर परख कर उनको समाजोपयोगी सार्थक रूप प्रदान करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। तत्कालीन पत्रों में धर्म[3]—समाज-सुधार आंदोलनों के स्वर सदैव परिपुष्ट आध्यात्मिकता तथा राष्ट्रीयता की भावना से ओर-प्रोत रहे थे। सर्वप्रथम तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों की पृष्ठभूमि में हिन्दी पत्रकारिता की प्रतिक्रिया तथा उस पर पड़े प्रभावों आदि का विवेचन करना समीचीन होगा।

3. धार्मिक सांस्कृतिक आंदोलन और हिन्दी पत्रकारिता—तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक वैचारिक आंदोलनों से उस समय तीन बुद्धिवादी दृष्टिकोण उभरे थे—1. 'ब्रह्म समाज' में केशव चन्द्र सेन ने पश्चिमी विचारधारा के समकक्ष बनने के लिए भारत के अधिक-से-अधिक पश्चिमीकरण का समर्थन किया था। "ब्रह्म समाज यही चाहती है कि किसी तरह हिन्दूपन की बू मुल्क से दूर हो।"[4] हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य में इस संकुचित अभारतीय विचारधारा को कभी अधिक महत्त्व नहीं दिया गया। 2. दूसरी चिन्तनधारा दयानंद सरस्वती द्वारा प्रतिपादित 'आर्य समाज' की थी जिनके अनुसार 'वेद' ही सर्वसम्मत ज्ञान-विज्ञान और विकास के अविरल स्रोत हैं। वे भ्रमातीत और अमोघ हैं। वेदों के अतिरिक्त जो भी ज्ञान और चिन्तन है वह भारतीय होने पर भी ग्राह्य नहीं हो सकता। इस विचार धारा ने हिन्दू धर्म को आक्रामक स्वरूप देकर ईसाई, इस्लाम, जैन, मुस्लिम आदि धर्मों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया था। 'आर्य समाज' का आधार संकीर्ण और दृष्टिकोण कट्टरतावादी था। हिन्दी पत्रकारिता ने इस संकीर्ण मत का कभी समर्थन नहीं किया। हिन्दी के सम्पादकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दयानन्द से लिखित

1. चतुर्वेदी पत्रिका की माइक्रोफिलम नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी, नयी दिल्ली में सुरक्षित है।
2. चतुर्वेदी पत्रिका, 1 मार्च 1895, पृ० 1
3. हिन्दी प्रदीप, नवंबर 1879, पृ० 21
4. डा० वंशीधर लाल : भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता, पृ० 47

शास्त्रार्थ में 64 तर्क पूर्ण प्रश्न पूछकर 'दूषण मालिका' प्रकाशित की थी।[1] हिन्दी पत्रों ने आर्यसमाज के अन्य धर्मों के प्रति नकारात्मक कट्टरतावादी दृष्टिकोण की भर्त्सना की थी "ये मनुस्मृति और महाभारत से चुने हुए श्लोकों को प्रामाणिक मानते हैं। एतदभिन्न सब पुस्तकों को आधुनिक और कल्पित कहते हैं। पुराणों को तो गप्प ही ठहराते हैं। षट्-दर्शनों के प्रचारक शंकराचार्य को भी सिड़ी बताते हैं तो और इतर दार्शनिक किस गिनती में हैं। वेदभाष्य के कर्त्ता सायणाचार्य महीश्वर तथा मोक्षमूलर को भ्रांतियुक्त कहते हैं। सामाजिक बातों में वर्ण विवेक का रहना आवश्यक मानते हैं—विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह के पल्टे नियोग की व्यवस्था करते हैं।"[2]

'भारत जीवन' साप्ताहिक में दयानंद के धर्म समर्थकों पर तीखा कटाक्ष किया गया,[3]—"दयानंदियों की महिमा अपरंपार है···

हटे ये धर्म से जब खुद अब औरों को हटाते हैं।
कहीं देश की उन्नति ही के फकत ये गीत गाते हैं॥
कहीं नाम ले वेदों का गवारों को फँसाते हैं···
कहीं पंडित अगर आया तो फौरन दुम दबाते हैं।
कहीं शास्त्रार्थ करने को बेशर्मी से सिर उठाते हैं॥

जैन धर्म के अनुयायियों से भी 'आर्यसमाज' के द्वारा उनके संप्रदाय पर तीव्र प्रहार करने पर लंबा वाद-विवाद छिड़ गया था 'मित्र विलास' (लाहौर) ने दोनों के मतों को छापकर दयानंद सरस्वती पर तीखी टिप्पणी की थी, "हमें आश्चर्य है कि स्वामी जी उस पुस्तक का नाम तो बता नहीं सकते जिसमें से उन्होंने श्लोक निकाले हैं फिर किस प्रकार भड़क-भड़ककर शास्त्रार्थ करने को उदित होते हैं? यदि कुछ विद्वता का ज्ञान उनमें है तो क्यों नहीं पुस्तक का नाम बताकर जैनियों का वर पूरा करते। वृथा टर्राने से कुछ नहीं हो सकता। यदि आपमें सामर्थ्य है तो बता दीजिए नो चेत उनसे क्षमा-प्रार्थना कीजिए। यदि आप दोनों में से एक भी नहीं करेंगे तो नालिश आप पर अवश्य होगी···जैनी लोग केवल आपकी लिखी बातों का प्रमाण माँगते हैं यदि आप वह नहीं दे सकते तो आपसी अविवेकी और हास्यास्पद कौन होगा।"[4]

इन कुछ उद्धरणों से स्पष्ट है कि तत्कालीन पत्रों ने 'आर्यसमाज' के असहिष्णु दृष्टिकोण का कभी समर्थन नहीं किया, किन्तु उन्होंने 'आर्यसमाज' की प्रजातांत्रिक भावना समाज सुधार, एकता, शिक्षा भारतीयों में आत्मविश्वास जगाने की अविस्मरणीय भूमिका को बार-बार सराहा था। 'आर्यसमाज' मानव समानाधिकार, स्वराष्ट्र प्रेम तथा जातीय भाषा को गौरव देने वाला प्रगतिशील आन्दोलन था[5] इसके सुधारात्मक, भाषा सम्बन्धी

1. भारतेन्दु ग्रंथावली (भाग 3), पृ० 693-98
2. हिन्दी प्रदीप, नवंबर 1879, पृ० 21
3. भारत जीवन, 30 जनवरी 1888, पृ० 3
4. मित्र विलास, 24 जनवरी 1881, पृ० 203
5.A इन्द्र विद्यावाचस्पति, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, पृ० 32
B. दृष्टव्य है : स्वामी दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश 8वां समुल्लास, पृ० 10 समुल्लास

तथा राजनीतिक उन्नयन[1] के विस्तृत प्रयासों के लिए हिन्दी पत्रकारिता में प्रशंसा का स्वर ही गूंजता है। इस प्रकार 'केशव चन्द्र की दृष्टि में आत्मशून्यता और दयानंद में यथार्थ के प्रति पराड्. मुखता और अतिवादिता थी।

तीसरी चिंतन धारा रामकृष्ण मिशन में स्वामी विवेकानन्द की थी। इसका दृष्टि-कोण अधिक उदात्त, समग्र, समाजोपयोगी तथा सार्थक था जो आध्यात्मिक-भौतिक, पूर्व और पश्चिम दोनों पक्षों के श्रेष्ठ चिन्तन से समन्वित था। वेदान्त से गृहीत इस विचार-धारा ने मानव को प्रकृति का चरम उत्कर्ष और इसी वसुन्धरा के उपभोग को सार माना है। इसने सनातन हिन्दू धर्म को शुद्धतम उदात्त रूप में प्रस्तुत कर उसको गरिमा और बौद्धिक दृष्टि प्रदान की। रामकृष्ण मिशन ने सभी धर्मों की बुनियाद एक बताकर तथा मानव-सेवा, राष्ट्र भक्ति को महत्त्व देकर नव चेतना जगायी थी जिसका प्रभाव निश्चित रूप से हिन्दी पत्रकारिता पर पड़ा था। थियोसाफी, पूना सार्वजनिक सभा (1871) 'लोक हितवादी' आदि संस्थाएँ भी पत्रकारिता को प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से प्रभावित कर रही थीं। "देश की भलाई तो ऐसे ऐसोशियेसन और सभाओं से हो सकती है जिनमें केवल पोलि-टिकल बातों पर विचार और बहस हो जैसे 'पूना सार्वजनिक सभा' है। सो ऐसी सभा करने की अभी यहाँ के लोगों में हिम्मत नहीं हुई और सभाओं से हमें क्या लाभ।"[2]

उपर्युक्त विवेचन पत्रकारिता में बढ़ती नवचेतना और धार्मिक-राजनीतिक जागृति और परिपक्वता को दिग्दर्शित करता है।

इन सभी विचारधाराओं से समन्वित सांस्कृतिक-धार्मिक पुनरुन्नयन को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है :

धार्मिक जागरण : विविध आयाम

4. धर्म तथा जीवन के प्रति समग्र उदात्त दृष्टिकोण

नवोत्थान काल की पत्रकारिता में भारतीयता और आधुनिकता, राजनीति और धार्मिक सामाजिक मान्यताओं को परस्पर अन्योन्याश्रित तथा पूरक माना गया। उसने जीवन को समग्र मानकर राष्ट्रीय भावना को विस्तृत फलक प्रदान किया। 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित लेख 'समाज का सुधार पोलिटिकल ताकत का पुश्तपनाह है' (सोशल रिफार्म इज दि बैक बोन आफ दि पोलिटिकल स्ट्रैंथ) में कहा गया "सच तो यों है कि सच्चे राज-नीतिक सुधार या मुल्की ताकत के लिए समाज-संशोधन प्रधान अंग और मुख्य सहायक हैं"[3] इसी प्रकार धर्म और राजनीति को परस्पर सम्बद्ध मानते हुए इन्हें राष्ट्रीयता का

---

1. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्यसमाज का इतिहास भाग-2, पृ० 107
2. हिन्दी प्रदीप, फरवरी 1880, पृ० 3
3. हिन्दी प्रदीप—अक्टूबर 1900, पृ० 22

मूलाधार बताया गया, "यह भी कोई धर्म में धर्म है जो राजनीतिक बुनियाद पर नहीं है या जिसका लगाव राजनीतिक विषयों से बिल्कुल नहीं है। बल्कि इस तरह का मजहब कौमियत (नेशनलिटी) को जड़ से उखाड़ देता है—आपस की सहानुभूति, बंधु, प्रेम, देश या जाति की तरक्की का उद्योग आदि धर्म का प्रमुख अंग हैं और यही उद्देश (पोलिटिक्स) राजनीतिक विषयों का भी है।"[1]

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने धर्म और संस्कृति को व्यापक उदात्त अर्थ में ग्रहण किया था। उसे किसी संप्रदाय-विशेष से संबद्ध न होकर मानव धर्म और राष्ट्र-धर्म के रूप में निरूपित किया गया है, "सब उन्नतियों का मूल धर्म है। इससे सबसे पहले धर्म की ही उन्नति करनी उचित है। देखो, अंगरेजों की धर्म-नीति और राजनीति परस्पर मिली है, इससे उनकी दिन-दिन कैसी उन्नति है। उनकी जाने दो, अपने ही यहाँ देखो, तुम्हारे यहाँ धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाज-गठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं[1]... उन लोगों ने धर्म नीति और समाज को दूध पानी की भाँति मिला दिया है।"[2]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि धर्म की धारणा रूढ़िवादी रूप में न पनपकर एक समग्र राष्ट्रवादी धर्म के रूप में उभर रही थी।

5. धर्म की बुद्धिवादी पुनर्व्याख्या

तत्कालीन लेखकों ने धर्म को बुद्धि की कसौटी पर कसकर ही धार्मिक सिद्धान्तों और आस्थाओं को अपनाने पर बल दिया। उनका मत था कि धार्मिक मतों और सिद्धान्तों का युगानुरूप शोधन तथा सामयिक सन्दर्भों के अनुसार पूनर्मल्यांकन होना चाहिए। 'सारसुधानिधि' (कलकत्ता) पत्रिका में प्रकाशित 'धर्म' की बौद्धिक पुनर्व्याख्या में वैज्ञानिक आधुनिक चेतना की कौंध मिलती है, "प्रकृति के उत्कर्ष साधन का नाम धर्म है—अतएव दोनों प्रकार के उत्कर्ष करना ही मनुष्य का उचित कर्तव्य है।"[3]

हिन्दी पत्रों ने ईसाई धर्म को बुद्धि के निकष पर कस कर ही मिशनरियों के धर्म प्रचार का खण्डन किया था, "अनुमान एक सप्ताह हुआ कि 'इंडियन नेशन' नामक पत्र में एक एवद्देशीय ख्रीष्ट मतावलंबी महाशय ने यह बात प्रकाश की थी कि भारतवर्ष में तभी ऐक्य हो सकता है कि जब समग्र देश क्रिश्चियन हो जाय और केवल यह धर्म सत्य है।— प्रथम फ्रांस और जर्मनी दो क्रिश्चियन हैं, क्यों लड़ा करते हैं? क्याथोलिक और प्रोटेस्टांत दोनों क्रिश्चियन हैं क्यों सदा झगड़ा करते हैं? दूसरी बात अर्थात् ख्रीष्ट मत की सत्यता के लिए—जो कुछ थोड़ा संग्रह किया है उसे प्रकाश करते हैं—इसे हम किसी द्रोह या ईर्ष्यावश, नहीं लिखते केवल सत्य का ध्यान देकर प्रकाश करते हैं। केवल बाइबिल के प्रमाणों में परस्पर विरोध दिखलाएँगे? ईश्वर अपने कामों से प्रसन्न होता है फिर

1. हिन्दी प्रदीप, अगस्त-सितम्बर 1899 पृ० 14-15
2. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, दिसंबर 1884 (वर्ष 11 अंक-3)
3. सारसुधानिधि, 27 जनवरी 1879, पृ० 34-35

परमेश्वर ने हर एक वस्तु पर जिसे उसने बनाया था, दृष्टि की ओर देखा बहुत अच्छी है। (उत्पत्ति 1.31)।

ईश्वर अपने कामों से असंतुष्ट होता है तब आदमी के पृथ्वी पर उत्पन्न करने से ईश्वर पछताया और उसे शोक हुआ"[1] (उत्पत्ति 7.6) अतः प्रत्येक धार्मिक मत-मान्यता पर बौद्धिक वाद-विवाद करना तथा उसको बुद्धि की कसौटी पर जाँच-परखकर ही स्वीकार करना तत्कालीन पत्रकारिता की विशिष्टता थी।

हिन्दी पत्रकारिता में धर्म का धर्म-निरपेक्ष संप्रदाय विहीन व्यापक चित्रण हुआ है। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित 'कुरान शरीफ', 'पंचपवित्रात्मा' तथा 'इशुखृष्ट और ईशकृष्ण' (जनवरी 1879) आदि रचनाएँ मूल धर्म के वास्तविक स्वरूप को पहचानने की समझ पैदा करती हैं। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ सभी धर्मों के पाठकों में राष्ट्रीय ऐक्य, सहिष्णुता, बंधुता आदि के लिए उदात्त धार्मिक दृष्टिकोण निर्मित करना चाहती थी। उन्होंने भारतीय सनातन परंपराओं का भी आँख मूंदकर अंध-समर्थन नहीं किया।··· वैष्णव शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का बैर छोड़ दे। यह समय इन झगड़ों का नहीं। हिन्दू, जैन मुसलमान सब आपस में मिलिए।"[2]

धर्म की आधुनिक संदर्भों के अनुकूल पुनर्व्याख्या करते हुए 'हिन्दी प्रदीप' में लिखा गया, "धर्म ऐसा होना चाहिए जिस पर चलकर समाज में बल आवे—धर्म धृ धातु से बना है जिसका अर्थ धारण या रक्षा के हैं। धर्म पर चलने से हमारी रक्षा नहीं हुई तो उसे धर्म नहीं मानेंगे—जिस बात से देश की उन्नति हो वही धर्म है···।"[3]

6. धर्म के प्रति इहलौकिक दृष्टिकोण

तीव्र भौतिक परिवर्तनों तथा बौद्धिक जागरण ने धर्म का कायाकल्प कर दिया था। 'जागरण युग' में धर्म का मुख्य ध्येय मोक्ष प्राप्ति या परलोक सिधारना नहीं रह गया था, उसका ध्येय राष्ट्रीय उन्नयन, परस्पर सद्भाव और एकता की भावना जागृत करना था। "बहुत से लोग मानते हैं कि धर्म केवल परलोक के साधन के लिए है, हमारे इस जीवन से कोई सरोकार नहीं है—ऐसा मानने वालों की यह बड़ी भूल है जो अपने इस जीवन को बिगाड़कर परलोक बनाने की फिकिर में हैं।"[4]

आधुनिक धर्म का मर्म समझाते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं—"जब पेट भर खाने को ही न मिलेगा तो धर्म कहाँ बाकी रहेगा,···उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है उसको आर्य क्षेत्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं।···भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव

---

1. भारत जीवन, 17 मार्च 1884, पृ० 2
2. भारतेन्दु ग्रंथावली (तीसरा भाग), पृ० 971
3. हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर 1900, पृ० 5
4. वही, पृ० 21

और जैसी उपासना हो ऊपर से सब आर्य मात्र एक रहो।"[1]

7. धार्मिक कर्मकाण्ड तथा बाह्याडंबरों की भर्त्सना

तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता ने ब्राह्मणों, मठाधीशों, साधु-संन्यासियों और ढोंगियों के कपटाचरण की जमकर पोल खोली है। धार्मिक चरित्रहीन व्यक्तियों के नैतिक ह्रास की ओर इंगित करते हुए 'बिहारबंधु' ने लिखा था—"हबड़ा हितकारी कहता है कि कलकत्ते में एक अहिरी टोले में एक कनफटा बाबाजी आए थे और सिद्धताई के साथ दवाई देते थे। एक नौजवान लड़की लड़का होने की दवा लेने को उनके पास गई वे उसको लेकर चल दिए। आखिर पकड़े भी गए अब हवालात में दवा करे हैं।"[2]

'हिन्दी प्रदीप' ने हिन्दू धर्म की कमजोर नब्ज पर हाथ रखते हुए कहा—"हिन्दू की कौम कहाँ तक 'डिजेनेरेट' पतित और नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है कि त्रिवेद और पंचायतन पूजन की कौन कहे शीतला भवानी से लेकर भूत-प्रेत पिशाच-डाकिनी शाकिनी वाले मियाँ गाजी, मियाँ इमात हुसैन तक को पूजती है फिर भी हम अपने धर्म के महत्त्व के घमण्ड में फूले नहीं समाते।"[3]

'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' (15 फरवरी 1874) में संपादक भारतेन्दु ने कहा कि धार्मिक कर्मानुष्ठान और आडंबरों ने वास्तविक धर्म लोप कर दिया है। "अनेक कोटि देवी-देवताओं का माहात्म्य, छोटी-छोटी बातों में ब्रह्म हत्या का पाप और तुच्छ-तुच्छ बातों में बड़े-बड़े यज्ञों का पुण्य अहं ब्रह्म ज्ञान और मूल धर्म छोड़कर उपधर्मों के आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया···धर्म हमारा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है कि केवल स्पर्श सेवा एक चुल्लू पानी से भर जाता है। कच्चे गले-सड़े सूत वा चिउँटी की दशा हमारे धर्म की हो गई है।"[4]

इन पत्र-पत्रिकाओं में धर्म के मर्म की गहरी छानबीन की गई है तथा धार्मिक आडंबरों पर निर्भीक भाव से विचार किया गया है जिससे इनका धर्म के प्रति क्रान्तिकारी जागृत दृष्टिकोण का पता चलता है। धर्म संप्रदाय सम्बन्धी झगड़ों को छिछोरापन कहा गया[5] "आप सांख्य दर्शन के अनुसार चलते हैं, आप द्वैतवाद के सिंहासन मानने वाले हैं, आप अद्वैतवादी हैं। सच पूछिए तो हम सब दर्शनों को एक मानते हैं, क्या भया जो एक ही बात दूसरे से जोड़ नहीं खाती। जब यह निश्चय है कि सब एक ही बात की खोज में लगे हैं तो एक-दूसरे के सहायक हैं।"

---

1. भारतेन्दु ग्रंथावली, तीसरा भाग, पृ० 801-2
2. बिहारबंधु, 11 अगस्त 1874, पृ० 139 (जिल्द 2 नं० 23)
3. भट्ट निबन्धमाला (दूसरा भाग), पृ० 108
4. हरिश्चन्द्र मैगजीन, 15 फरवरी 1874
5. हिन्दी प्रदीप, जून 1894, पृ० 106

8. धार्मिक सद्भाव

भारतेन्दुकाल में हिन्दू-मुसलमान मुहर्रम आदि पर्व मिलकर मनाते थे। सुन्नी मुसलमान मुहर्रम से परे रहते थे। 'बिहारबंधु' ने (16 जनवरी 1878) पटना के मुहर्रम के विषय में लिखा था—'पटने में हिन्दू अगर मदद न करे तो यहाँ मुहर्रम ही न हो। बजह यह है कि मुसलमान में सुन्नियों को इससे परहेज सी है वह क्या इसकी मदद करेंगे, बाकी शीये, सो ये गिनती के सौ-पचास तो हई हैं। यह मुहर्रम के लिए पटने का नाम मशहूर होने की वाइस सिर्फ हिन्दू ही हैं।"[1]

'पियूष प्रवाह' ने 'मुहर्रम' पर्व का वर्णन इस प्रकार किया था—"यह मेला बिहार पटने में बड़ी धूमधाम से होता है—पटने के पटनियाँ सैकड़ों हिन्दू ऐसे कि धूमधाम से ताजिए निकालते हैं और सारे रास्ते हाय-हाय करते छाती पीटते दरगाह तक जाते हैं।'[2]

4.2 समाज सुधार सम्बन्धी नव-चेतना

4.2.1 19वीं शताब्दी का राष्ट्रीय जागरण केवल भौतिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों तक परिसीमित नहीं था, उसमें समाज की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक-अंतश्चेतना का स्पन्दन भी जुड़ा हुआ था। भारत इस काल में एक ऐसे संक्रमण से गुजर रहा था जब पुरातन. रुग्ण परंपराओं तथा अभिजात संस्कारों का सम्मोहन टूटने लगा था और धर्म के प्रति आस्था डगमगाने लगी थी। भारत के सामाजिक जीवन के पुरातन आदर्श जो कभी मूल्यवान थे, उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते जड़ होकर अपनी अर्थवत्ता और मौलिक शक्ति खो चुके थे। उच्च शिक्षित वर्ग पाश्चात्य सांस्कृतिक-प्रतिमानों एवं नवीन यूरोपीय सभ्यता को आत्मसात् कर भारतीय परंपरा के बोझ से मुक्ति पाने को व्याकुल था। भारतीय समाज का बदला तेवर तथा मिजाज, उसके अन्तर्बाह्य स्वरूप में आमूल परिवर्तन की कहानी कह रहा था। समाज विस्फोटक बिंदु पर पहुँच चुका था। ऐसे समय में संवेदनशील रचनाकारों ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से टूटते-मूल्यहीन होते समाज की मनोदशा, सामाजिक अन्तर्विरोधों का सजीव चित्रण कर उसे आत्म-विश्लेषण और शोधन के लिए प्रेरित किया था।[3] तत्कालीन पत्रकारिता ने समाज की हर दुखती रग को छेड़ा था, जिसे पत्रकार ने भी जिया और भोगा था। उसने सामाजिक दायित्व वहन करने में पूरी ईमानदारी और वैज्ञानिक चिन्तन का सहारा लिया था। तत्कालीन पत्रकारिता की जीवन्तता और प्रासंगिकता उनकी गहरी जीवन-सम्पृक्ति में ही मानी जा सकती है।

तत्कालीन पत्रकारिता का मूल ध्येय युग की आवश्यकताओं के अनुकूल समाज

---

1. बिहारबंधु, 16 जनवरी 1878, (जिल्द 6 नं० 3) पृ० 1
2. पियूष प्रवाह, 25 नवम्बर 1884, पृ० 4-5
3. डा० वंशीधर लाल : स्वतंत्रता आंदोलन और हिन्दी पत्रकारिता, पृ० 95

का यथोचित शोधन, संस्कार, परिष्कार, जागरण और भारतीयों में आधुनिक मानसिकता का बीजारोपण करना था। समाज के ओजस्, तेजस् और वर्चस् के जागरण के लिए उसने गहराई से सामाजिक कुसंस्कार और अन्ध परंपराओं के निष्कासन के लिए आन्दोलन चलाया था। उस काल में व्याप्त जाति-व्यवस्था, अनेक वैवाहिक कुसंस्थाओं, पर्दा प्रथा आदि सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध व्यापक अभियान छेड़कर उसने सामाजिक जन-जागरण का प्रवर्त्तन किया था। अतः सामाजिक चेतना के उद्बोधन में जितनी भूमिका तत्कालीन समाज-उन्नायकों राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, रानाडे, ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर आदि की रही उनसे अधिक नहीं तो उनके समकक्ष उस युग के पत्रकारों की भी रही।

2. वैवाहिक कुसंस्कारों के विरुद्ध अभियान

संपूर्ण भारतीय समाज बाल-विवाह, अनमेल वृद्ध विवाह, दहेज प्रथा, विधवापन आदि वैवाहिक कुप्रथाओं से जकड़ा हुआ था। हिन्दी पत्रकारिता ने तत्कालीन सामाजिक संगठनों के साथ मिलकर इन्हें समूल नष्ट करने का अभियान चलाया था।

1. बाल-विवाह

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने बाल-विवाह से होने वाली राष्ट्रीय हानि तथा सामाजिक पतन को गहराई से विवेचित किया था।[1] उस समय कन्या का विवाह 5 से 10 वर्ष की आयु में कर देने की प्रथा थी। जागरूक साहित्यकारों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में प्रकाशित श्री शरण कृत 'बाल-विवाह प्रहसन' (15 अप्रैल, 1874) संभवतः बाल-विवाह समस्या पर पहला नाटक था। इसके प्रारम्भ में ही नटी सूत्रधार का हाथ हटाकर कहती है—"कहैं क्या? तुम्हें नहीं मालूम कि मेरी 9 वर्ष की एक कन्या हो चुकी है जिसके लिए तुमने अभी तक कोई उत्तम वर नहीं ढूँढा, इसी सन्देह में संसार के कोई पदार्थ मुझे नहीं भावते। विशेषकर के जब देखती हूँ कि आजकल पाँचवें-सातवें ही वर्ष में लोग अपनी कन्या का विवाह कर देते हैं फिर भला सोचना कहाँ रहा।[2] 'पियूष प्रवाह' के संपादक अंबिकादत्त व्यास ने 'बाल-विवाह' कुप्रथा पर कटाक्ष करते हुए 'डुमराव' नामक स्थान के समाचार प्रकाशित किए थे—"यहाँ एक लड़की का दो ही बरस की उम्र में ब्याह हुआ है। अब वह तीन बरस की हुई है पर नंगी फिरा करती है और यही हाल उसके दुलहे का भी है। (इसी को गुड़िया-गुड्डे का खेल कहते हैं।)[3]

इस काल की पत्र-पत्रिकाओं ने बाल-विवाह की सामाजिक विसंगति पर भरपूर

1. "बाल्य-विवाह की प्रचलित कुरीति के रहते हमको अपनी बल-वीर्य सत्व, स्वाधीनता, तेज पौरुष और श्री की वृद्धि की इच्छा करना भूल है।"
—हिन्दी प्रदीप—जून-जौलाई, 1899, पृ० 6
2. हरिचन्द्र मैगज़ीन, 15 अप्रैल, 1874
3. पियूष प्रवाह—25 अप्रैल 1884, पृ० 12 (भाग 1 संख्या 3)

वार किया था। "समाज में अनुचित शब्द की कोई परिमित परिभाषा नहीं है। जैसे समाज में बाल्य विवाह की प्रचलित कुरीति को कोई बुरी और अनुचित नहीं मानता। पर वह बालिका जिसका विवाह अत्यन्त छोटी उमर में कर दिया गया कदाचित् विधवा हो गई और कामदेव की असह वेदना के परवश हो व्यभिचार में तत्पर हो गई तो समाज के सभी लोग उसे बुरा कहने लगते हैं और उससे घिनाते हैं—सच पूछो तो इसमें उस बालिका बेचारी का क्या अपराध ? आप समाज की कुरीति क्यों न शुद्ध कर डालें···पर वहाँ तो यह कुसंस्कार सवार है 10 वर्ष की न ब्याहेगी तो कन्यादान का पुण्य न होगा, भैंस का दान कहलावेगा और विवाह के पहले कहीं रजो दर्शन हो गया तो पुरखे नरक में ढकेल दिए जाएंगे··"[1] मासिक 'भारतेन्दु' (वृन्दावन) के संपादक राधाचरण गोस्वामी ने भी 'बाल-विवाह' प्रथा को निदंनीय ठहराया था।[2]

उन दिनों प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और रूढ़िवादियों में वर-कन्या की विवाह की आयु तथा सामाजिक कुप्रथाओं के शोधन में ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप हो या नहीं ? इन प्रश्नों को लेकर तीव्र विवाद की स्थिति थी। 'कविवचन सुधा' का मत था—इस कुप्रथा के विरुद्ध उठाया कदम हिन्दू धर्म में हस्तक्षेप नहीं है क्योंकि मनुस्मृति और अन्य हिन्दू धर्म नियमों में विवाह की आयु 26 वर्ष मानी[3] गई है। 'हिन्दुस्थान'[4] (कालाकांकर, दैनिक) 'अलमोड़ा अखबार',[5] 'भारत बंधु'[6] आदि ने इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप को उचित ठहराया था। किन्तु 'सज्जन विनोद',[7] 'प्रयाग समाचार' ने सरकारी हस्तक्षेत के प्रति कड़ा विरोध प्रकट किया था। अंग्रेजी सरकार ने 'बाल-विवाह' को रोकने के लिए 1891 में एक कानून बनाया था। 'भारत जीवन' ने इसे अन्यायपूर्ण बताते हुए महारानी विक्टोरिया के 1858 की घोषणा के विपरीत कहा—"यह समझना कठिन है कि सरकार इतनी शीघ्रता से इस बिल को क्यों पास करना चाहती है ? जबकि यह हिन्दू धर्म के विपरीत है और सारे भारत में इसका विरोध हो रहा है।"[8] परंपरावादी

1. हिन्दी प्रदीप—जून-जौलाई 1899, पृ० 6
2. भारतेन्दु—फरवरी 1891 ई० (पुस्तक भाग 5 अंक 2)
3. कविवचन सुधा, मार्च, 1883, उद्धृत रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब 1883, पृ० 245
4. हिन्दोस्थान, 14 जनवरी, 1891, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स···1891, पृ० 38
5. अलमोड़ा अखबार, 26 दिसम्बर, 1893, रिपोर्ट आन नेटिव···1883, पृ० 10
6. भारतबंधु, 21 जून, 1878, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, जौलाई-दिसम्बर, 1878, पृ० 577
7. सज्जन विनोद और 'प्रयाग समाचार', 24 मार्च, 1886, रिपोर्ट आन नेटिव··· 1886, पृ० 260
8. भारतजीवन, 9 फरवरी, 1891 (माइक्रोफिल्म, नेहरू लाइब्रेरी, नई दिल्ली)

भारतबन्धु।

THE
BHARAT BANDHU.

A Weekly Journal of Literature, Science, News and Politics &c.

PUBLISHED EVERY FRIDAY.

[illegible]

VOL V
No 32

[illegible]

ALIGARH, 22nd AUGUST [illegible]

Price

[illegible]

पत्रों में 'खिचड़ी समाचार' ने भी इस संवैधानिक कदम को भारतीय धार्मिक रीति-रिवाजों में सीधा हस्तक्षेप बताया था तथा इसके विरुद्ध मीटिंग करके सरकार को स्मरण पत्र पेश करने को कहा था।[1] किन्तु ऐसे कट्टर पंथी पत्रों की संख्या अधिक नहीं थी। अनेक समाज-सुधार संगठनों तथा नेताओं के बाल-विवाह के विरुद्ध सराहनीय कार्यों में एम० बी० मालाबारी के दो प्रकाशित नोटिस 'नोटिस आन इन्फेंट मैरिज इन इंडिया' और 'एनफोरस्ड विडो हुड' महत्त्वपूर्ण थे। 'हिन्दुस्थान' ने मालाबारी की मथुरा मीटिंग का विवरण प्रकाशित किया।[2] 'नेशनल सोशल कांफ्रेंस' मीटिंग (29 दिसम्बर, 1889 बंबई) में भी प्रस्ताव पास किया गया था कि विवाह के समय कन्या की आयु कम-से-कम 14 वर्ष होनी चाहिए।[3]

हिन्दी पत्रकारिता ने 'बाल-विवाह' के अभियुक्तों के लिए जुर्माना आदि सजा और उस विवाह को नाजायज करार करने की युक्ति सोची थी—"जब तक गवर्नमेंट इसका एक सरल कानून न बना देगी कि जो लोग 14 या 12 वर्ष के नीचे कन्या, 20 या 18 वर्ष के पहले लड़के का विवाह करें, उन हिये के अन्धों पर जुर्माना किया जाय और वह विवाह नाजायज समझा जाय, तब कदाचित असर होवे।"[4]

'भारत मित्र' ने 2 जून, 1878 के अग्र लेख में लिखा था "बंग देश से बाल-विवाह उठा देने के लिए प्रेसिडेन्सी विभाग के स्कूल इनस्पेक्टर ने एक उपाय स्थिर किया है जो बालक विवाहित हैं वो कलकत्ते के विश्वविद्यालय में प्रवेशिका परीक्षा न देने पावें, इस प्रकार का एक आइन करना उचित है।"[5] 'भारतबंधु' ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया था।[6]

2. विधवा विवाह

उस युग में विधवा-विवाह को लेकर काफी तनाव की स्थिति और पक्ष-विपक्ष में वाद-विवाद था। 'भारत जीवन' (21 अप्रैल, 1884) ने लिखा था 'भारतवर्ष' में 2 करोड़ से भी अधिक हिन्दू विधवा हैं जिनमें से 36 लाख, बाइस हजार एक सौ सात (36 22 107) विधवा पश्मिोत्तर और अवध प्रदेश में हैं। अर्थात् 2 सौभाग्यवती के पीछे एक स्त्री ऐसी है जो वैधव्याग्नि से दग्ध है। इन 36 लाख विधवाओं में से 31 लाख ऐसी हैं

1. 'खिचड़ी समाचार' 17 जनवरी, 1891, उद्धृत रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब, पृ० 59-60
2. 'हिन्दोस्थान' (कालाकांकर) 18 मार्च, 1885, रिपोर्ट आन··· 1885, पृ० 222
3. होम डिपार्टमेंट जूडिशिलय प्रोसीडिंग्स, जनवरी, 1891, (नं० 159 ए)
4. हिन्दी-प्रदीप, अप्रैल, 1890, पृ० 21-22
5. भारतमित्र, 2 जून, 1878
6. भारतबंधु, 21 जून, 1878, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० 1878, पृ० 577·

जिनकी अवस्था 30 वर्ष से भी कम है।"[1] इनको समाज ने जीवन के हर सुख से वंचित कर दिया था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि के प्रयत्नों से हिन्दू विधवा अधिनियम 15 नवम्बर 1856 को पारित हो गया था[2] लेकिन कूपमण्डूक समाज पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ा था। अत: अनेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने दुस्साहस के साथ लीक के हटकर विधवा विवाह के लिए आह्वान किया था।"[3] कोई भी ऐसा न होगा जो बाल विधवाओं के आर्त्तनाद से व्यथित न होता हो···आप लोगों ने वेद-शास्त्र की परिपाटी और मर्यादा का सत्यानाश कर डाला केवल बाल विधवाओं का गला रेतनें से तुम सब शास्त्र के विश्वासी और मर्यादा वाले कहलवाओगे···विधवा विवाह के प्रतिपक्षियों···क्या पाराशर ऐसे-वैसे मुनि थे जिन्होंने साफ-साफ विधवा विवाह की आज्ञा दी है। 'कलां पाराशरी स्मृति', इस वचन से उसी का प्रचार होना चाहिए···लीक-लीक गाड़ी चले लीकै चले कपूत। लीक छोड़ तीनों चलै सायर सूर सपूत।"[4]

हिन्दू कन्याएँ अधिकतर अल्प आयु (8-9 वर्ष) में ही विधवा हो जाती थीं। यदि विवाह योग्य आयु पर पहुँचने पर कभी उनसे ऊँच-नीच हो जाए तो वे भ्रूण-हत्या करने को विवश होतीं। 'कविवचन सुधा' (11 मार्च 1878)[5] तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित 'भ्रूण-हत्या' (मार्च, 1875) लेख में भारतेन्दु ने इस कुप्रथा के विरुद्ध सरकार से कानून की माँग की थी "हम सर्कार से, अपने सब आर्य भाइयों से हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं इसको सब लोग एक बेर चित्त देकर और हठ छोड़कर सुनें। यदि सर्कार कहे कि हम धर्म विषय में नहीं बोलते तो उसका पहले हमसे उत्तर सुन लें—प्रजा के प्राण की रक्षा राजा को सबके पहले मान्य है। वैसे ही जो हम कहेंगे उसमें भी प्रजा के प्राण से सम्बन्ध है। अभी बनारस में बूला नाले पर से एक लड़की नाले में से निकली है—ऐसी हत्या सारे हिन्दुस्तान में यदि सब पकड़ी जाएँ और गिनी जाएँ तो प्रति महीने में एक हजार होती हैं। इस हत्या के कारण और दोषभागी कौन लोग हैं? हमारे ही आर्य्यगण

---

1. भारतजीवन, 21 अप्रैल, 1884
2. (क) भारतेन्दु (वृन्दावन) 18 अगस्त, 1883 ई०
   (ख) Home Deptt—Deposit Proceedings, Feb,-1884—Nov.-84 (SR II)
3. (क) हरिश्चन्द चन्द्रिका, अप्रैल-मई 1880, पृ० 1-4
   (ख) हिन्दी प्रदीप, 1 जौलाई, 1885, पृ० 19-20
   (ग) प्रेमधन सर्वस्व, द्वितीय भाग, पृ० 189, 194, 199
4. हिन्दी प्रदीप, नवंबर, 1882, पृ० 23
5. 'गर्भ निरोध के सभी सुरक्षात्मक कदम उठाने के पश्चात् भी यदि कोई महिला गर्भवती हो जाती तो वह गर्भपात करने का प्रयास करती। यदि गर्भपात में असफल हो जाती तो उस असंवैधानिक शिशु को भूखा मारने का प्रयास करती।"
   —कविवचनसुधा, 11 मार्च, 1878

और धर्माभिमानी लोग। यदि वह पौनर्भव सन्तति की निंदा न करते उसका अनुमोदन करते तो यह हत्या क्यों होती ? यह न हमने कभी कहा है, न कहेंगे कि बल से सबका पुनः विवाह हो परन्तु जो कन्या ही दशा में विधवा हो गई है वा जिनकी काम चेष्टा हो उनका विवाह क्यों न हो ? क्या हमारे धर्माभिमानी पंडित और आर्यगण उस प्रकृति के नित्य और प्रबल प्रवाह को भी अपने हठ से रोकना चाहते हैं ?—समुद्र का वेग किसने रोका है ?—बड़े ऋषि मुनि जिस वेग को नहीं रोक सके आपके पुरखे ब्रह्म पराशर ऋष्य श्रृंग जिस आतुरता को नहीं सह सके उसको ये स्त्रियां सहें ?"[1]

'आर्या'[2], 'अल्मोड़ा अखबार'[3] आदि ने भी इसके लिए कानून की मांग की थी। 'प्रयाग समाचार'[4] ने 18 जनवरी 1885 में कायस्थ पाठशाला में हुई मीटिंग का हवाला देते हुए विधवा विवाह के प्रति समर्थन व्यक्त किया था। आर्य समाज की पत्रिका 'आर्य दर्पण' ने कहा था कि विधवाओं ने अपनी दयनीय दशा का अनुभव किया है और उन्होंने शिकायत की कि विधुर कितनी ही बार विवाह कर सकता है जबकि विधवा को यह अनुमति नहीं है।[5] 'ब्राह्मण', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'भारत जीवन' आदि ने 'विधवा विवाह' के समाचारों पर हर्ष व्यक्त किया था तथा इसे प्रोतसाहित किया था।[6]

शिशु कन्या-'हत्या' विशेषतः जाट, गुर्जर, अहीर, राजपूत जाति में प्रचलित थी 1870 ई० में अंग्रेजी शासकों ने इस प्रथा के विरुद्ध कानून बनाकर रोकने की कोशिश की थी।[7] हिन्दी पत्रकारिता ने इसके विरुद्ध अभियान चलाया था।

3. अनमेल वृद्ध विवाह तथा बहु विवाह

'आर्य दर्पण' (आर्य समाज की पत्रिका) ने अनमेल विवाह के विरुद्ध शिकायत की थी कि हिन्दू धन के लालच में अपनी अल्प आयु वाली लड़की का विवाह अधिक आयु के पुरुष से कर देते हैं। अतः इस प्रकार की प्रथा को रोकने के लिए कदम उठाने चाहिए।[8] इस विवाह का कुपरिणाम यह होता था कि पति शीघ्र मर जाता था और उस लड़की को वैधव्य का नारकीय कष्ट झेलना पड़ता था। 'प्रयाग समाचार' ने इसे दबाने के लिए

---

1. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, मार्च 1875, पृ० 165-166
2. 'आर्या' 1 जून, 1878, उद्धृत रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब, 1878, पृ० 518-19
3. अल्मोड़ा अखबार, 6 अक्टूबर, 1884, रिपोर्ट आन··· 1884, पृ० 602
4. प्रयाग समाचार, 21 जनवरी, 1885, रिपोर्ट आन··· 1885, पृ० 6
5. आर्यदर्पण, अप्रैल 1892, रिपोर्ट आन··· 1892, पृ० 158
6. श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, 15 मार्च, 1875, पृ० 166
7. होम डिपार्टमेंट, पुलिस, मई 1872, नं० 13-17 (ए)
8. आर्यदर्पण, मार्च 1881, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स···एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब 1881, पृ० 206

वाइसराय से अनुरोध किया था।[1] 'भारत जीवन' में एक पाठक ने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाते हुए लिखा था —"मैं अपने देश-हितैषियों से प्रार्थना करता हूँ कि यदि 80 वर्ष के बूढ़ से 8 वर्ष की कन्या विवाह हुआ तब कै दिन वह सधवा रह सकती है ? मानो कि उसके विधवा होते ही दिधवा विवाह कर दिया गया तो तीस वर्ष की उमर तक उसके कितने विवाह संभव हैं ? अब कहिये कि प्रथम विधवा विवाह प्रचार होना या बुढ़वा विवाह रहित होना (कि जिसमें सिवाय निज लालसा और कन्या वाले की घोर मूर्खता के कोई भी बाध्यता नहीं है) उचित है।" (का० प्र० बनारस)। 'हिन्दी पत्रों' ने इस कुसंस्कार के खिलाफ आवाज उठाई थी।[2] 'बिहारबंधु'[3] ने 'चिट्ठीपत्री' स्तम्भ में तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित 'अवधूत' नाटक में बहुविवाह के दुष्परिणामों को दिखाया गया है। 'भारतबंधु' (अलीगढ़) ने अनमेल विवाह के विरुद्ध कानून की माँग की।[4]

4. दहेज प्रथा

हिन्दी पत्रकारिता ने विवाह के अवसर पर दहेज लेने-देने की भर्त्सना कर समाज और सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। 'हिन्दी प्रदीप' ने कान्य कुब्ज ब्राह्मणों में व्याप्त इस कुचलन के विरुद्ध आवाज उठाते हुए व्यंग्यपूर्वक कहा था —"ऐसे समय में जबकि फेमिन और टैक्स के बोझ से देश का देश उजाड़ हो रहा है। ऐसे बहुत थोड़े से आदमी निकलेंगे जो रंगे-पंजे हों और खाने-पीने से खुश हों।...ऐसी दशा में कान्य कुब्जों की कन्याओं का ब्याह एक बहुत बड़ी मुहीम हो रही है।...सच तो यह है कि ये लोग बड़े लालची होते हैं।...जो करार में कुछ भी कम मिला तो लड़की वाले की बड़ी दुर्दशा करते हैं।...लड़के को गिरो रखकर कर्ज लेते हैं।...लड़का क्या है बल्कि Landed Property उसे कहना चाहिए।"[5]

'कविवचन सुधा' ने भी सरकारी सहायता की अपेक्षा रखते हुए कहा था— "ब्राह्मणों के इस वर्ग में लड़की का विवाह तब तक नहीं होता जब तक लड़की का बाप वर के बाप को दान के रूप में अच्छी राशि नहीं देता। निर्धन माँ-बाप की लड़कियाँ बुढ़ापे तक कुवारी बैठी रहती हैं।[6] उनका जीवन कष्टप्रद और दयनीय है, दहेज-प्रथा निर्धनता का कारण बन गई थी। 'भारतबंधु' (अलीगढ़) ने लिखा था कि विवाह में अत्यधिक अपव्यय से भारतीय निर्धन होते जा रहे हैं। सरकार को इसमें हस्तक्षेप कर उन्हें नष्ट होने

1. प्रयाग समाचार, 28 मई, 1883, रिपोर्ट आन...1883, पृ० 460
2. भारतजीवन, 18 जौलाई, 1887, पृ० 6, 3 मार्च, 1884 पृ० 3
3. बिहारबंधु, 27 सितम्बर, 1883 तथा 4 अक्टूबर, 1883
4. भारतबंधु, 18 जनवरी, 1878, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स 1877, पृ० 151
5. हिन्दी प्रदीप, नवम्बर 1882, पृ० 23
6. कविवचन सुधा, 21 मार्च, 1877, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब 1877, पृ० 366

से बचाना चाहिए।[1] आज के समान तब भी दहेज प्रथा, हत्या का कारण बन जाती थी। 'आर्यदर्पण' के अनुसार ललिता प्रसाद कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने अपनी पुत्री की हत्या इसलिए कर दी कि वह दहेज के 500 या 600 रुपये नहीं दे पा रहा था।[2] 'मित्र विलास' ने भी कान्यकुब्जों में प्रचलित दहेज प्रथा की भर्त्सना की थी।[3]

अनेक जातीय तथा सामाजिक संगठनों ने सभाएँ बुलाकर इसके विरुद्ध आंदोलन चलाया था। 'नागरी नीरद' (मिर्जापुर) ने जौनपुर के मजिस्ट्रेट द्वारा राजा शंकर दत्त दूबे के घर में हुई (27 मार्च 1892) एक मीटिंग में विवाह खर्च में कटौती करने के प्रस्ताव को प्रकाशित किया था।[4] जातीय पत्रिकाओं 'जाट समाचार'[5] (जनवरी, 1892) 'कायस्थ अखबार'[6] (24 सितम्बर, 1888) आदि में विवाह-व्यय में कटौती के समाचार प्रकाशित किये थे।

नारी-समस्याओं के प्रति आधुनिक प्रगतिशील दृष्टिकोण

युग-युग से प्रताड़ित-अपमानित नारी वर्ग के प्रति इन पत्रिकाओं की संवेदनशीलता और जागरूकता इनकी जागृत चेतना की परिचायक है। ये स्वाधीन विचारों, प्रजातांत्रिक एवं मानवतावादी मूल्यों को प्रस्थापित करने वाली पत्रिकाएँ थीं। उन्होंने नारी को पुरुषों के समान अधिकार, सम्मान और प्रतिष्ठा की अधिकारिणी घोषित किया। उस युग में नारी के प्रति समाज की मानसिकता मध्ययुगीन सामन्ती-बोध से संयुक्त थी। "बाहर हम कितनी ही तरक्की करें, बड़े से बड़ा इमतिहान पास कर उशना और बृहस्पति के प्रतिनिधि हो जाएँ स्त्रियों की दशा में जब तक परिवर्तन न होगा कुछ न हो सकेगा।"[7]

अनेक नारी-समस्याओं-पर्दा प्रथा, शिशु-हत्या, स्त्री अशिक्षा आदि पर विचार कर इन पत्र-पत्रिकाओं ने नारी की विडम्बना-पूर्ण हीन-स्थिति का जिम्मेदार पुरातन धारणाओं और कट्टरपंथी तत्वों को ठहराया था। "पण्डितों ने अपनी पोथियों में स्त्रियों को हर तरह से घटाया है – स्त्रियों को सिवा लौंडी और दासी बनाय रखने के उन्हें किसी काम का न रखा। अपने आधीन रख सब तरह का अत्याचार और जुल्म उन पर करना उचित समझा—हम उन पंडितों को कैसे समझावें—ये आपके घर की शोभा हैं, संसार

1. भारतबंधु, 13 जून, 1878, रिपोर्ट आन··· 1878, पृ० 537
2. आर्यदर्पण, फरवरी, 1895, रिपोर्ट आन— 1895, पृ० 127
3. मित्रविलास, 1 जौलाई, 1878 रिपोर्ट आन·· 1878, पृ० 581-82
4. नागरी नीरद, 6 अप्रैल, 1893, रिपोर्ट आन···
5. कायस्थ समाचार, 24 सितम्बर, 1888, रिपोर्ट आन···1888, पृ० 646
6. जाट समाचार, जनवरी 1892, रिपोर्ट आन···1892, पृ० 25
7. हिन्दी प्रदीप, जून 1894

की सार पदार्थ हैं।[1]...

1. पर्दा-प्रथा

नारी की स्वतंत्रता का हनन करने वाली पर्दा प्रथा का चलन मुगलकाल से मानते हुए 'समय विनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार' पत्रिका ने कहा—"वास्तव में पर्दा भी हमारे इस भारत-खण्ड में न था—समय की महिमा से इस देश के राजा बलहीन होने लगे तो यवनों का राज्य इस भरत खण्ड पर हुआ।—जिसकी स्त्री वा कन्या दर्शनीय देखी वा उसके पण्डिता होने की चर्चा सुनी बलात्कार से उसे पकड़ कर ले गए। जब बादशाहों की यह दुर्गति हुई तो उनके अनुचरों के अन्याय का क्या कहना है।—एक हमारे प्रसिद्ध पण्डित वाग्भट्ट जी ने अपनी कन्या सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ाकर ऐसी पण्डिता बनाई कि उस समय पाण्डित्य में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था—जब उस लड़की के विद्यावती के समाचार उस समय के यवन बादशाह ने सुने तो अपने गणों को उसके हरने की आज्ञा दिई—जब इस प्रकार भरत खण्ड में अनीति फैली तो लोगों ने अपनी-अपनी लड़कियों को पढ़ाना बंद कर दिया और दुष्ट बादशाहों की अनरीति से परदा भी श्रेष्ठ मनुष्यों में होने लगा।"[2] 'हिन्दी प्रदीप' ने इस पर्दा प्रथा के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त किया था—"हम अपने आपको इस बात का बड़ा फक्र समझते हैं कि हमारी मस्तूरातें असूर्यपश्या है अर्थात् सूर्य भी उनका मुख कभी नहीं देख सकते, धिक् हजार लानत इस फक्र और शेखी पर।"...पर क्या किया जाय? अब परंपरा में यह कुरति समादृत है।[3]

2. स्त्री-शिक्षा पर बल

नारी-सुधार के प्रति जागरुक अभिव्यक्ति सर्व-प्रथम भारतेन्दु काल में ही दिखाई देती है। नारी की जड़ता, अज्ञान और अन्धविश्वासों को तोड़ने के लिए हिन्दी पत्रकारिता ने निरन्तर अलख जगायी थी उन्होंने स्त्री-शिक्षा को महत्व देते हुए उसे अनिवार्य बताया। 'बिहार बंधु' (13 फरवरी 1878) ने हिन्दुस्तान के पतन का कारण स्त्री अशिक्षा को बताते हुए लिखा—"शास्त्र में स्त्री को पुरुष-अर्धांग लिखा है। तो विचारने की बात है कि आधा अंग जिसका मूरख रहेगा वह कभी ज्ञानी नहीं हो सकता और देखना चाहिए कि सिर्फ इसी रोग से हिन्दुस्तान की ऐसी दशा है कि इस घड़ी सब देश वालों से हम लोग ज्यादा खराबी हाल में हैं।[4] "समाज की प्रगति का उत्स स्त्री-शिक्षा

---

1. हिन्दी प्रदीप, जौलाई-अगस्त, 1895 पृ० 10
2. समय विनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार, 15 मई 1876, पृ० 4
3. हिन्दी प्रदीप, जून, 1894
4. बिहार बंधु, 13 फरवरी, 1878, पृ० 4

को कहा गया।" स्त्रियों के शिक्षित और शोभित हुए बिना समाज की सुघराहट बाहरी-चमक-दमक चूना पोती कबर के समान है।[1]

पत्रकारिता ने समाज में नारी पुरुष के लिए दोहरे मान-दण्ड, दोहरे मूल्यों एवं आचरणों के विरुद्ध मोर्चा बंदी की थी। उस युग के सामाजिक अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और यथार्थ का चित्रण इस विरोधाभास में बखूबी व्यक्त हुआ है—"बाबू साहब छंदान तोड़ बिलाइत की राह सिधारने के लिए कदम उठाये हुए हैं, बबुआइन घर बैठी गोबर पाथती रही।—बाबू साहब आर्य समाजी और ब्रह्मसमाजी है। थियोसोफी में अपना औवल दरजा कायम करते हैं, घर में बहू जी भूत पूजनी समाज की प्रिसीडेंट हैं।[2]···

जातीय 'क्षत्रिय पत्रिका' में जवाहिर लाल पाठक की प्राप्त कविता में नारी की दयनीय दशा पर अश्रुपात किया गया है—

"दारा गण की लखि दशा, दृग भरि आवत नीर।
जाते भारत होत इमि, जिमी रमणी बिनु चीर।।"[3]

'समय विनोद' (पाक्षिक नैनीताल) ने एक अग्रलेख "कन्याओं को शिक्षा अवश्य चाहिए' में कन्या-अशिक्षा से होती हानि की चर्चा करते हुए उनके अज्ञानांधकार को दूर करने पर जोर दिया। "हमारे स्वदेशीय लोग अपनी कन्या का वध दो प्रकार से करके आप अपने सिर पाप चढ़ाते हैं—प्रथम यह कि छोटी ही अवस्था में अपनी कन्या का विवाह ज्योतिषियों, नापितों और ब्राह्मणों के विश्वास पर बिना देखे भाले अज्ञात कुरूप और व्यसनी लड़के के साथ कर देते हैं, दूसरा यह अपनी कन्याओं की शिक्षा पर ध्यान नहीं देते, कुपढ़ रखते हैं। कहते है जब वे साक्षर हो जाएगी तो उनका चाल-चलन नष्ट हो जाएगा इत्यादि अनेक प्रकार की निर्मूल शंका करते हैं। हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि लड़कियों का पढ़ाना-लिखाना आज नई बात नहीं, यह हमारे देश की प्रचीन रीति है।···आप लोग न्याय की दृष्टि से विचार करें कि स्त्रियों के पढ़ने-लिखने से चलन बिगड़ता या सुधरता है;···लड़कियों को शिक्षा देने से अनेक उत्तम फलों का प्रादुर्भाव होता है।[4]

3. कन्या-विक्रय तथा वेश्या-वृत्ति

भारत में 1873 ई० में कलकत्ता में 6881 पंजीकृत वेश्याएं थीं। कलकत्ता में जून-जोलाई 1874 तक 6455 वेश्याओं का पंजीकरण हुआ था। इन आंकड़ों के अतिरिक्त

---

1. हिन्दी प्रदीप, नवबंर 1882, पृ० 23
2. वही, जून 1894
3. क्षत्रिय पत्रिका-बैशाख, शुक्ल 10, संवत् 1940, पृ० 217
4. समय विनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार, 15 मई 1876, पृ० 3-5

अधिकतर ऐसी वेश्याएं भी थी जिनका पंजीकरण पुलिस से सांठ-गांठ के कारण नहीं हो पाया था।[1] देश में फैले इस अनाचार के विषय में 'समय-विनोद' ने तीव्र भर्त्सना कर सरकार से इसे बंद करने की माँग की थी—"यह कैसा दुराचार हो गया। शास्त्र में शूद्र की कन्या-विक्रय का निषेध है—अब तो बहुधा ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यों ने ही यह पेशा ले लिया। रुपया के लालच से अपनी आत्मजा कन्या को चोर-उच्चका, काना-लंगड़ा, शराबी कबाबी कोई हो उसके हवाले कर देते हैं। अपनी कन्या का सुख-दुःख कुछ नहीं देखते हैं—अपनी बेटी से व्यभिचार कराते हैं। बेटी के बदले रुपया लेना शास्त्र में साफ कन्या-विक्रय लिखा है।"[2] भारतेन्दु हरिचन्द्र ने वेश्या समस्या पर व्यंग्यात्मक 'वेश्यास्तवराज' लिखा था।[3] हिन्दुस्थान (कालाँ काकर) ने श्री डायर के बाम्बे गार्जियन से प्रकाशित पत्र में श्री डायर की सरकारी कर्मचारियों द्वारा ऐसी शर्मनाक कार्यों के लिए कटु आलोचना की थी।[4] 'प्रयाग समाचार' ने भी अग्रलेख में अंग्रेजी सेना के लिए भेजी जा रहीवेश्याओं की पोल खोली थी।[5]

4. जाति-वर्ण व्यवस्था

प्राचीन भारत में विभिन्न जातियाँ व्यवसाय की पहचान, सामान्य रीति-रिवाज, खान-पान, विवाह के संगठन को दर्शाती जाति थी।[6] जाति प्रथा हिन्दू धर्म का लोह ढाँचा थी—आदमी का सामाजिक अस्तित्व उसके जन्म पर निर्भर था, न कि उसकी योग्यता और सम्पत्ति पर।[7] 'जन्म' सामाजिक विभाजन का आधार होने के कारण जाति अपरिवर्तनीय थी। जातिवर्ण व्यवस्था अजनतांत्रिक थी और विषमता का बीज वपन करने के कारण सामाजिक-आर्थिक स्वाधीनता में रोड़े अटकाती थी—पत्र पत्रिकाओं ने जाति-प्रथा को बदलते समय के प्रतिकूल तथा देश की प्रगति में अवरोधक बताया, "एक समय था जबकि जाति पाँति का अलग-अलग होना धर्म का प्रधान अंग था"...इस समय जाति-पाँति के झगड़े ही पर देश की फजीहत और सत्यानाश का दारमदार आ लगा है।"[8] समाज में सह भोजन, सजातीय विवाह, सामाजिक असमानता, व्यवसाय के चुनाव में स्वाधीनता अभाव आदि

1. बिहार बंधु, 18 मई, 1874, 21 जौलाई 1874 और 9 जून, 1884
2. (क)समय विनोद, 1 मई 1876 (ख) कवि वचन सुधा 31 दिसम्बर 1977 रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स 3 दिसम्बर 1877, पृ० 28
3. भारतेन्दु ग्रंथावली (तीसरा भाग), पृ० 843-45
4. हिन्दुस्तान 13-14 जून 1888, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स—1888, पृ० 84
5. प्रयाग समाचार, 18 जून 1888 रिपोर्ट आन···1888, पृ० 384
6. सुमित सरकार, माडर्न इंडिया, पृष्ठ 54-55
7. राधाकुमुद मुखर्जी, हिंदू सभ्यता, पृ० 108-109
8. हिन्दी प्रदीप, फरवरी-मार्च 1896, पृ० 55

जाति-व्यवस्था की प्रबल प्रवृत्तियाँ थी—'कभी भी सभ्य स्वाधीन और महान होंगे··· स्त्रियों को न पढ़ाना, बाल्य-विवाह, सह भोजन का न होना जिन्हें हम अपनी जाति में एक बड़ी श्रेष्ठता की बात मान बैठे हैं वे किस सभ्य जाति में समादरित हैं।'[1] ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज ने जाति प्रथा की भर्त्सना की। इसके विपरीत आर्य समाज ने चार वर्णों पर आधारित जाति व्यवस्था को पुनरुज्जीवित किया। सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ेपन और गुलामी का मूल कारण जाति व्यवस्था बताया गया—"जाति भेद, वर्ण भेद, संप्रदाय भेद ने समाज को महारोगी, निर्बल और जीर्ण कर डाला किन्तु पराधीनता पिशाची के चंगुल में पड़े हुए इन अनार्यों को हटाने का उद्यम कभी नहीं किया गया।[2]

5. अस्पृश्यता

अछूत हिन्दू समाज के बहिष्कृत-तिरष्कृत अंग थे जिन्हें सार्वजनिक कुओं, मंदिर, पठन-पाठन के उपयोग का अधिकार प्राप्त नहीं था। अछूतों के लिए साधारण अपराध में भी कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। उन पर सामाजिक-उत्पीड़न-अन्याय धर्म सम्मत माना जाता था। उत्तर उन्नीसवीं शताब्दी में प्रबुद्ध भारतीयों ने इस अमानवीय प्रथा के खिलाफ रोष प्रकट किया और अनेक सुधार संगठनों तथा राष्ट्रीय आदि ने भी अस्पृश्यता उन्मूलनं के लिए शिक्षा-प्रचार पर जोर दिया। हिन्दी पत्रकारिता ने भी इस ओर सराहनीय कार्य किया था। 'हिन्दी प्रदीप' संपादक का मत था अन्त्यज जाति में भी पैदा हुआ हो और नेकचलन है, तो वही कुलीन है।[3] इस पत्रिका ने निम्नलिखित श्लोक पर पाठकों की राय पूछी थी,

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासो भवेविप्रो ब्रह्म जानति ब्राह्मणः।"

इस वाक्य में क्या मूल है?···पहला वाला चाहते हैं? हमारे ग्राहकों में से लोगों का इस पर क्या सिद्धान्त है?'[4] भारतेन्दु ने स्पष्ट कहा था—'जाति में कोई चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए—छोटी जाति के लोगों का तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए।'[5] गांधीजी ने इसी मत को आगे चलकर आन्दोलन का रूप दे दिया था।

---

1. बिहारबंधु, 13 फरवरी 1878, पृ० 4
2. हिन्दी प्रदीप, जौलाई 1389, पृ० 32-33
3. वही, मार्च 1909
4. वही
5. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, दिसंबर 1884 वर्ष 11 अंक 3

6. निःशुल्क श्रम या बेगार प्रथा

पुलिस, राजकीय अधिकारी तथा उच्च वर्ग निर्धन असहाय लोगों से बेगार कराना अपना हक समझते थे। 'ब्राह्मण' आदि पत्रिकाओं ने इस अमानवीय शोषण के विरुद्ध आवाज बुलन्द की थी।' तारीख 26 अप्रैल को लाला दुर्गाप्रसाद बजाज का चुन्नी नामक कहार किसी कार्य को बाजार जाता था। राह में उसके दो-तीन सिपाही जो आदमियों के भूखे थे, मिल गए और पकड़ लिया। उन्होंने इस निरपराध दीन पराये नौकर को बेगार की अबाध्य अथारिटी पर पकड़ा था उन्हें क्या डर था ?—शोक का विषय है कि इन गरीबों को क्यों बिना अपराध ऐसी दुर्दशा के साथ पकड़ते हैं और उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे काम लेते हैं। गुलाम बनाने में और इसमें क्या भेद है ?—बेगार लोग ठीक उन्हीं के सदृश घंटों और दिनों वरंच कभी-कभी महीनों पराए बंधन में रहते हैं। इस बेगार का भयंकर दुःख अढ़तियों, व्यापारियों, गाड़ी वालों, दर्जियों, राजों, कहारों आदि से पूछा जाना चाहिए कि वे इसके नाम से कैसा थर-थर कांपते हैं।[1]

7. रिश्वत, सिफारिश, मदिरा-वृत्ति

अंग्रेजी राज में वर्तमान भारत के समान रिश्वत, सिफारिश, मदिरा-माँस वृत्ति का प्रचलन खूब था। 'ब्राह्मण' ने समाज के नैतिक पतन की ओर इंगित करते हुए लिखा था—"क्या कोई ऐसा भी विचारशील पुरुष होगा जो रिश्वत को बुरा न समझे—हमारी समझ में तो जैसे चोरी करना, डाका डालना और जुवा खेलना है, वैसा ही यह भी है। ··हम पूछते हैं कि क्या घूस खाने वाला अपने कर्त्तव्य से कुछ अधिक करता है··· वरंच चोर इत्यादि से इसमें इतनी दुष्टता और निर्लज्जता अधिक होती है कि वे डरते-डरते पराया घर घालते हैं और यह उलटा चोर कुतवाल को डाँटे का लेखा करता है—सारांश यह कि नीति, बुद्धि और धर्म के यह काम निस्सन्देह विरुद्ध है—कुछ दिनों से हमारे देश में इसका ऐसा प्रचार हो गया है कि मूर्खों की कौन कहे पढ़े--लिखे लोग भी इस प्रत्यक्ष पाप से किंचित मात्र लज्जा और घृणा नहीं करते—विशेषतः रेल पर तो रिश्वत बीबी ने नौवाबीही मचा रखी है। बिना कुछ चढ़ाये पिण्ड ही छूटना कठिन।'[2] 'समय विनोद' ने भी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और सिफारिश पर अचूक वार किया था।[3]

---

1. ब्राह्मण, 15 मई, 1883, पृ० 27
2. वही, पृ० 30
3. कलियुग देवता को सिफारिश देवा और भ्रष्टा सुंदरी उनकी दोनों स्त्रियों ने अपनी चाल ढाल से ऐसा मोहित किया है कि मानो वह उसके दास ही बन गये। जिसने सिफारिश देवी की उपासना तथा योग्य की वह धन धान्य पूर्ण हो गया—जिसने भ्रष्टा देवी का प्रसाद पाया वह—संसार का डर तो क्या, ईश्वर से भी निर्भय हो गया—समय विनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार, 15 मई-जून 1876।

मदिरा से सरकारी राजस्व को बहुत अधिक आय थी।[1] मद्य-मांस-निषेध पर तत्कालीन पत्रिकाओं में पर्याप्त सामग्री प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दु ने 'बकरी विलाप', 'अथ मदिरा स्तवराज', 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' आदि में इन सामाजिक दुर्बलताओं पर भरपूर को व्यंग्य बाण साधे थे।

8. संयुक्त परिवार का विरोध एवं समुद्र-यात्रा का समर्थन

संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय समाज की एक विशिष्टता रही है किन्तु हिन्दी पत्रों ने इसे आत्म-निर्भरता और स्वाबलंबन की भावना के लिए घातक बताया। "पारिवारिक एकान्नवर्तिता (ज्वाइंट फेमिली) आत्म निर्भरता और स्वतन्त्रता-अपहरण का प्रधान कारण है—हमारे लोगों के अंधे माँ-बाप जानबूझकर अपने लड़कों को परभाग्योपजीवी बना देते हैं--बाप माँ यदि संतान को पूरी उमर आजाने से उन्हें अलग कर दें—तो दोनों सुखी रहें।—प्राचीन आर्यों में 12 से 24 वर्ष ब्रह्मचर्य का यही प्रयोजन था।"[2]

इस प्रकार समाज के सभी संगठन और पत्रकारिता माध्यम सामाजिक, धार्मिक कुसंस्कारों से त्रस्त होकर उनकी जड़ें खोदने में लगा हुआ था। इस संधि-स्थल पर खड़ा समाज इतनी बहुविध समस्याओं से जूझ रहा था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जागरण युग में पत्रकारों ने अपनी सारी बौद्धिक विचार-शक्ति, साहस और शिल्प-साधना इससे जूझने में जगा दी थी।

9. सांस्कृतिक आदर्श

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में जो सांस्कृतिक-धार्मिक-सामाजिक नव-चेतना प्रतिबिंबित हुई, वह सार रूप में इस प्रकार है :

1. जीवन को समग्रता से देखने का प्रयास।
2. पुरातन मूल्यों को आधुनिक नवीन संदर्भों के साथ संयुक्त करके जीवन को गतिशील बनाना। समाज को परिवर्तन-विमुखता और हीन-भाव से मुक्त करके उनमें आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव की भावना भरना।
3. पारलौकिक दर्शन से भिन्न इहलौकिक विचारधारा की प्रतिष्ठा एवं मानवता को महत्व देना।
4. मध्ययुगीन मनोवृत्तियों के प्रति नकार और उपेक्षा का भाव।
5. विगत की अनुभूतियों और अनुभवों पर तर्क पूर्ण दृष्टि।
6. लीक से हट कर सांस्कृतिक समस्याओं से जूझने का साहस।

---

1. बिहार बंधु 3 अप्रैल 1876, पृ० 4
2. हिन्दी प्रदीप, जौलाई-अगस्त 1889, पृ० 33

7. पाठकों को मानसिक जड़ता, दास्य भाव, भाग्योपजीविता और पलायनवादी मनोवृत्ति से हटाकर नव-जीवन दृष्टि की अभिव्यंजना।
8. बौद्धिक स्तर पर धर्म की नव-प्रतिष्ठा।
9. टूटते-संघर्षरत समाज के प्रति दायित्वपूर्ण यथार्थ दृष्टि।
10. भारतीय मृत आदर्शों एवं मान्यताओं के प्रति अनास्था।

हिन्दी पत्रकारिता में मुखरित जीवनादर्शों से तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण का यथार्थ बोध होता है। इनके क्रांतिदर्शी सम्पादकों ने अपनी प्रगतिशील विचारधारा के योग से नव भारत के निर्माण में ऐसी भूमिका निभायी जो परवर्ती राष्ट्रीय आन्दोलन और पत्रकारिता के लिए वरदान सिद्ध हुई।